संजय कुमार केडिया उर्फ संजय केडिया

बनाम

आसूचना अधिकारी, स्वापक नियंत्रण

ब्यूरो और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 2008-2009/2008)

20 अगस्त 2009

(हरजीत सिंह बेदी और डॉ. बी.एस. चौहान, जे.जे.)

स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985;

धारा 36-ए (4), परंतु- अंवेषण पूरा करने के लिए हिरासत का विस्तार जांच-संतुष्ट होने वाली शर्तें - निर्धारण किया गया - हस्तगत प्रकरण में, लोक अभियोजक द्वारा मस्तिष्क का कोई प्रयोग नहीं किया गया- जांच की प्रगति का संकेत नहीं दिया गया -बाध्यकारी कारण जिनके लिए हिरासत के विस्तार की आवश्यकता है 180 दिन से अधिक नहीं दिखाए गए-दोनों विस्तार, कानून के विपरीत होने के कारण, अमान्य किये गये।

धारा 36-ए (4), परंतुक सपठित धारा 167(2) सीआर. पी.सी.-

जांच नहीं होने के आधार पर जमानत की अर्जी इस आधार पर प्रस्तुत की कि विस्तारित समय के भीतर अंवेषण पूरा नहीं किया गया विस्तार विधि के विरूद्ध पाया गया और अपीलांट को जमानत पर रिहा किया गया।

अपीलकर्ता को 12.2.2007 को गिरफ्तार किया गया था उस पर आरोप था कि उसने अपराध अंतर्गत धारा 24, 29, 30 और 38 स्वापक औषधि और मन प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 का अपराध किया। दि. 2.8.2007 को प्रतिवादी संख्या 1 ने

आवेदन किया कि उन्हें इस अधिनियम की धारा 36-ए के तहत अंवेषण पूरा करने के लिए हिरासत में विस्तार और रिपोर्ट पेश करने के लिए समय दिया जावें। दिनांक 30.1.2008 को प्रतिवादी संख्या 1 ने पुनः आवेदन किया कि उसे 13.2.2008 तक का समय और दिया जावे। दिनांक 4.2.2008 को अपीलांट ने एक जमानत आवेदन इस आधार पर दायर किया कि जांच विस्तारित समय के भीतर पूरी नहीं हुई थी। आवेदन पत्र खारिज कर दिया गया था।

अपीलकर्ता ने प्रथम रिविजन याचिका उच्च न्यायालय में दायर कर विस्तार किये जाने के आदेश और जमानत अर्जी खारिज करने के आदेशों को चुनौती दी हाई कोर्ट ने अपीलांट की दोनों याचिकाएं खारिज कर दी. व्यथित अभियुक्तों ने इसकी अपील दायर की।

इस न्यायालय द्वारा अपील अभिनिर्धारित की गयी

1.1- धारा 36-ए(4) नारकोटिक का औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 अधिकृत करता है कि हिरासत की अवधि जो कुल मिलाकर एक वर्ष तक हो सकती है बशर्ते कि उसमें निर्धारित कड़ी शर्तों की संतुष्टि और पालना की गई हो। इसमें निम्न शर्तें है- (1) लोक अभियोजक द्वारा एक रिपोर्ट दी गई हो, (2) जो जांच की प्रगति को इंगित करता होंगी, (3) उसमें विशिष्ट और बाध्यकारी कारणों से 180 दिनों की अवधि से अधिक हिरासत में रखने का उल्लेख हो और (4) अभियुक्त को इसका नोटिस दिया जा चुका हो। (पैरा 9) (562-डी-जी)

1.2. दिनांक 2.8.2007 के आवेदन से पता चलता है कि यह प्रतिवादी नंबर 1 के अंवेषण अधिकारी द्वारा दायर किया गया है और दूर-दूर तक लोक अभियोजक द्वारा मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया गया और सरकारी वकील की ओर से जांच की प्रगति का संकते भी इंगित नहीं किया गया और न ही ऐसे बाध्यकारी कारण जिनके

लिए कस्टडी में विस्तार की 180 दिन से अधिक की हिरासत की आवश्यकता है उनका भी उल्लेख नहीं किया गया। इस आवेदन को विशिष्ट न्यायाधीश द्वारा जिस दिन आवेदन किया गया उसी दिन अनुमति दे दी गई। जिससे यह भी पता चलता है कि कोई नोटिस भी उस दिन मुलजिम को नहीं दिया गया था और वह न्यायालय में उपस्थित भी नहीं था दूसरा आवेदन दिनांक 30.1.2008 का तो और भी अधिक समझ से परे है। इस आवेदन का अवलोकन करने मात्र से पता चलता है कि यह दूर-दूर तक संतोषप्रद कारण नहीं देता है जो कि हितेंद्र विष्णु ठाकुर वाले मामले में परीक्षण निर्धारित किये गये थे। इस प्रकार अंवेषण विभाग को जो विस्तार 36-ए(4) के तहत दिये गये थे, वे आदेश में संतोषप्रद और शर्तों को पूरा नहीं करते थे इसलिए कानून के विपरीत होने के कारण, तदनुसार निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा 14 और 16) (566-एफ-एच, 567-ए-बी-जी, 568-बी-सी)

हितेंद्र विष्णु ठाकुर और अन्य बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र और अन्य 1994 (4) एससीसी 602 एवं उदय मोहन लाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2001) 5 एससीसी 453, पर भरोसा किया।

1.3. जमानत के लिए आवेदन की अस्वीकृति के अभिलेख के अनुसार अभियुक्त द्वारा डिफॉल्ट खंड के तहत जमानत याचिका दायर की गई। विशिष्ट न्यायाधीश ने यह पाया कि अंवेषण की अवधि दो अवसरों पर विस्तारित की गई और उसके समक्ष परिवाद विस्तारित की गई अवधि के भीतर प्रस्तुत किया गया और गंभीर आरोप थे,इसलिए अपीलांट जमानत का हकदार नहीं था। उच्च न्यायालय ने फैसले पर गौर करते हुए हितेंद्र विष्णु ठाकुर के मामले का इसमें उल्लेख किया और निर्देशों को वर्गीकृत करते हुये अपना मत अभिव्यक्त किया, जो पूरी तरह अप्रासंगिक हैं। दिनांक 13.2.2008 एवं 05.9.2008 के विशेष न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा पारित

किये गये संबंधित आदेश अपास्त किये जाते है और अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया जाता है। (पैरा 17 और 20) (568-सी-एफ 571-सी)

केस कानून संदर्भ

1994 (4) एससीसी 602 - भरोसा किया - पैरा 4

(2001) 5 एससीसी 453 - भरोसा किया - पैरा 4

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील नंबर 2008-2009/2008

कलकत्ता उच्च न्यायालय के सी.आर.आर. 2008 की संख्या 411 और 765/2008 मे पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 05.09.2008 से।

यु यु ललित, मनोज प्रसाद- अपीलांट की ओर से।

अविजीत भट्टाचारीजी, बिकास करगुप्ता - प्रतिवादीगण की ओर से।

इस न्यायालय द्वारा सुनाया गया किया गया।

आदेश

ये अपीलें निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर उत्पन्न हुई हैः

1. अपीलकर्ता को 12 फरवरी, 2007 को गिरफ्तार किया गया था उस पर अपराध धारा 24, 29, 30 और 38 के तहत स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (इसके बाद इसे 'अधिनियम' कहा जाएगा) का आरोप था और इससे पहले विशिष्ट न्यायाधीश के समक्ष 15 दिनों की हिरासत के लिए रिमांड हेतु पेश किया था, जिसके अवधि समय-समय पर बढ़ाई जा रही थी। अपीलकर्ता ने विशिष्ट न्यायाधीश के समक्ष जमानत के लिए आवेदन दिया था जो 28 मई, 2007 को खारिज कर दिया गया इसके बाद अपीलकर्ता ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की ओर रुख किया और कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा उसका आवेदन 7 जून, 2007 को खारिज कर

दिया गया था। अपीलकर्ता द्वारा 7 जून 2007 के आदेश से व्यथित होकर विशेष अनुमति याचिका 10 जुलाई, 2007 को पेश् की गई जो 3 दिसंबर, 2007 को खारिज कर दी गई। इस अधिनियम की धारा 36 ए (4) सपठित धारा 167 (2) सीआरपीसी 1973 के तहत यह दर्शित है कि इसमें 180 दिनों की अवधि निर्धारित की गई है जो 10 अगस्त 2007 को समाप्त गई थी, प्रतिवादी नंबर 1, नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो ने एक आवेदन दिनांक 2 अगस्त 2007 को धारा 36ए(4) के तहत दायर कर छह माह के बाद विस्तारित अवधि में अंवेषण पूरा करने और परिवाद पेश करने की अनुमति मांगी।विशिष्ट न्यायाधीश द्वारा इस अर्जी को आदेश दिनांक 2 अगस्त, 2007 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया और कहा गया कि यह विस्तारित अवधि 2 फरवरी 2008 को समाप्त हो जाएगी। ब्यूरो ने धारा इस अधिनियम की धारा 36ए (4) के तहत एक अन्य आवेदन पेश किया जो भी दिनांक 30 जनवरी 2008 को स्वीकार किया गया। और अंवेषण पूरा करने की विस्तारित अवधि 13 फरवरी 2008 तक विस्तारित की गई जो (सीधे तौर पर) कुल 1 वर्ष और 2 दिन के लिए विस्तार हो गई।

2. अपीलकर्ता ने जमानत के लिए एक और आवेदन इस अधिनियम की धारा 36ए(4) मय सपठित धारा 167(2) सीआरपीसी के तहत 4 फरवरी 2008 को इस दलील के आधार पर पेश की कि निर्धारित समयावधि के भीतर अंवेषण पूरा नहीं किया गया है जो कि विशेष न्यायाधीश द्वारा तय किया गया था। इस आवेदन को 13 फरवरी, 2008 को खारिज कर दिया गया।

अपीलकर्ता ने सीआरआर संख्या 411/2008 को कलकत्ता उच्च न्यायालय में 07.02.2008 को दिनांक 30 जनवरी, 2008 के आदेश के विरुद्ध आवेदन पेश किया जिसके द्वारा छह माह का विस्तार दिया गया था। एक परिवाद 7 फरवरी 2008 को प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा भी दायर किया गया। अपीलकर्ता ने कलकत्ता हाई कोर्ट के समक्ष सीआरआर नंबर 765/2008 जमानत आदेश 13 फरवरी 2008 के खारिज करने

के विरूद्ध भी आवेदन पेश किया। 6 अगस्त, 2008 को कलकत्ता उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने दोनों आवेदन सीआरआर को निस्तारित करने हेतु डिविजन बैंच की आवश्यकता जताई और दोनों आवेदन डिविजन बैंक के समक्ष पेश हुये और दौनो आवेदन डिवीजन बेंच द्वारा 5.09.2008 को खारिज कर दिये गये। इस आदेश के विरूद्ध यह अपील पेश की गई है।

3. इस मामले में 5 दिसंबर 2008 को अनुमति स्वीकार की गई और हालाँकि, दोनों प्रत्यर्थीगण अर्थात नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो एवं पश्चिम बंगाल राज्य को तामील कराई गई। इसके बावजूद उनके द्वारा एक साल तक उपस्थिति दर्ज नहीं कराई गई। पश्चिम बंगाल राज्य प्रत्यर्थी संख्या 2 हालाँकि, जो वास्तविक रूप से प्रतिस्पर्धी पार्टी नहीं है, उसने एक काउंटर पेश किया और इसका प्रतिनिधित्व इसके वकील श्री अविजित भट्टाचारजी जी द्वारा किया गया। उन्होंने शुरुआत में ही बताया और यह बिन्दू उठाया कि उनकी अनुपस्थित का कारण उनके गंभीर रूप से विकलांग होना रहा है। जिसके कारण वे प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित नहीं हो पाये। प्रत्यर्थी नंबर 1, प्राथमिक पक्षकार है, परन्तु उसने आगे बढ़ने का चुनाव किया। क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रथम प्रतर्त्यी था जिसकी केस लड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

4. ऊपर दिए गए व्यापक तथ्यों का खंडन प्रत्यर्थीगण द्वारा नहीं किया गया है अपिलार्थी की ओर से श्री ललित, विद्वान वकील अपीलकर्ता ने हमारे समक्ष दो तर्क प्रस्तुत किये हैं-

(i) हिरासत के विस्तार के लिए दो आवेदन दिनांक 10 जुलाई, 2007 और 30 जनवरी, 2008 को इस अधिनियम की धारा 36ए(4) में निर्धारित एवं संतोषप्रद शर्तो के अधीन अभियुक्तों को कोई नोटिस दिये बिना पारित किये गये थे। जो आदेश शुन्य थे और ऐसा 180 दिन के बाद की हिरासत का विस्तार विधि के विपरित था।

इस तर्क के समर्थन में उन्होंने हितेंद्र विष्णु ठाकुर और अन्य का मामला बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (1994 (4) एससीसी धारा 602) रखा

(ii) जैसे ही दूसरा हिरासत का विस्तार दिनांक 2 फरवरी, 2008 को समाप्त हुआ और अपीलकर्ता ने एक जमानत आवेदन इस अधिनियम की धारा 36ए (4) के तहत 4 फरवरी 2008 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किया, तब परिवादी ने भी एक आवेदन 7 फरवरी, 2008 को पश्चातवर्ती कथन करते हुये पेश किया और परिवादी ने अपिलार्थी का वह अधिकार भी छीन लिया जो उसे 2 फरवरी, 2008 को मिल चुका था। इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2001 (5) एससीसी 453) में अभिनिर्धारित किया गया था।

5. हालाँकि, श्री भट्टाचार्यजी ने विशेष न्यायाधीश एवं उच्च न्यायालय के निर्णय का समर्थन करते हुये तर्क दिये कि हिरासत की अवधि के विस्तार के दो आवेदन प्रत्यर्थी 1 द्वारा इस अधिनियम के धारा 36ए (4) के तहत पेश किये थे और उसके बाद विशेष न्यायाधीश ने सुनवाई कर मस्तिष्क का प्रयोग कर दोनों विस्तार स्वीकार किये थे। उसके बाद उन्होंने बिन्दु उठाया है कि दोनो न्यायालय विशेष न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा सभी सुसंगत तथ्यों को ध्यान में रख कर और मस्तिष्क में अधिनियम का बड़ा उद्देश्य रखते हुये और महान सामाजिक और कानूनी प्रभाव बताते हुये आवश्यकता अनुसार सख्ती से कानून लागू किया गया था।

6. उन्होंने यह भी बिन्दु उठाया कि 180 दिनों की अवधि 2 फरवरी, 2008 को समाप्त होना मानना गलत है, क्योंकि गणना से पता चलता है कि यह अवधि 8 फरवरी, 2008 को समाप्त होती है और परिवादी ने उसके एक दिन पहले ही परिवाद पेश कर दिया गया था और यह बताया कि मोहन लाल आचार्य वाला मामला (सुप्रा) में प्रतिपादित सिद्धांत इस मामले में लागू नहीं होते।

7. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागणों के द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 में यह प्रावधान है कि

जहां अंवेषण 24 घंटों में पूरा नहीं होता हो वहां विभिन्न उपधाराऐं यह प्रावधान करती है कि किसी व्यक्ति को 60 से 90 दिनों के अधिक समय तक अपराध की गंभीरता को देखते हुये निरूद्ध नहीं रखा जा सकता। मृत्यु दंड आदि से दंडनीय अपराधों में 90 की अधिकतम अवधि और अन्य अन्य अपराधों के लिए 60 दिन की अधिकतम अवधि में अनुसंधान पूर्ण करने का प्रावधान है और यदि इस अवधि में अनुसंधान पूर्ण नहीं होता है तो अभियुक्त अंतर्गत धारा 167 उपधारा (2) सीआरपीसी के तहत यदि वह जमानत आवेदन करता है तो उसे जमानत पर रिहा किया जावे। यह भी देखा जाये कि धारा 167 सीआरपीसी में निर्दिष्ट अवधि के पश्चात हिरासत का विस्तार देने की परिकल्पना नहीं की गई है। विधायिका ने हालांकि अपने विवेक से यह सोचा कि कुछ विशेष श्रेणियों या स्थितियों के लिए आवश्यक होता है कि जांच एजेंसियों को जांच के लिए अधिक समय दिया जाना चाहिए, तो ऐसे में मामले और शिकायत या आरोप-पत्र दाखिल करने के लिए इस तरह के विशेष कानून के तहत प्रावधान किए गए हैं।

8. आतंकवादी और विघटनकारी रोकथाम अधिनियम, 1987 (इसके बाद इसे 'टाडा' कहा जाएगा) और यह अधिनियम ऐसे दो विशेष अधिनियम है। इस अधिनियम की धारा 36 ए(4) से संबंधित प्रावधान निम्न प्रकार से पढे जावें- ''धारा 36 ए.

(1) दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी-

(ए) xxxx

(बी) xxxx

(सी) xxxx

(डी) xxxx

(2) xxxx

(3) xxxx

(4) धारा 19 अथवा धारा 24 अथवा धारा 27ए के अंतर्गत दंडित करने योग्य अपराध के अभियुक्त व्यक्तियों के संबंध में अथवा वाणिज्यिक मात्रा के संबंध में अपराधों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 167 की उपधारा-2 में ''नब्बे दिनांक'' के संदर्भ को जहां वे आते है, ''एक सौ अस्सी'' दिनों के संदर्भ के रूप में माना जायेगा।

परन्तु यदि एक सौ अस्सी दिनों की उस अवधि के भीतर अनुसंधान पूर्ण करना संभव नहीं हो, विशिष्ट न्यायालय एक सौ अस्सी दिनों की उस अवधि से अधिक अभियुक्त के निरोध के लिए विनिर्दिष्ट कारणों और अनुसंधान की प्रगति को दर्शाते हुये लोक अभियोजक की रिपोर्ट पर उस अवधि को एक साल बढा सकता है।

(5) xxxx

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के तहत अधिकतम नब्बे दिन की अवधि तय की गई है जो अधिकतम विभिन्न श्रेणीयों के अपराधों में एक सौ अस्सी दिन तक बढाई जा सकती है, इसका परन्तुक यह अधिकृत करता है कि इसे एक साल से अधिक नहीं बढाया जा सकता। परन्तु विनिर्दिष्ट कारणों और संतोषप्रद शर्तो के अधीन सतोषप्रद होने पर ही ऐसा होना चाहिए। लगाई गई शर्ते निम्न हैं

(1) लोक अभियोजक की रिपोर्ट,

(2) जो यह अग्रेषण की प्रगति इंगित करती हो, और

(3) विनिर्दिष्ट और बाध्यकारी कारण जिनकी वजह से अभियुक्त को 180 दिन से अधिक हिरासत में रखने की मांग की गई है।

(4) उसके बाद मुलजिम को नोटिस देने के बाद.

10. इस स्तर पर ध्यान देने योग्य प्रश्न यह है कि क्या विस्तार के लिए दो आवेदन लोक अभियोजक द्वारा दायर किए गए थे जिनमें आगे 180 दिन से अधिक अवधि के विस्तार की मांग की गई थी और उसमें आवश्यक शर्तों को पूरा कर लिया गया था। हमने यह पाया कि इस मामले को और लंबित रखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अब यह एकीकृत नहीं है और हितेंद्र विष्णु (सुप्रा) वाले मामले में इस न्यायालय के फैसले से पूरी तरह से कवर कर दिया गया है। इसी मामले की पीठ सुनवाई कर रही थी परन्तु टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) में खंड (बीबी) है, जिसके साथ मानदंड है और जिसके अनुरूप इस अधिनियम की धारा 36-ए की उपधारा (4) है। इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त के इस तर्क को स्वीकार किया गया कि 180 दिनो से अधिक अवधि का विस्तार किया गया है, परन्तु जो शर्ते थी, उनकी पालना संतोषप्रद रूप से नहीं हुई है, ऐसा इस न्यायालय द्वारा देखा गया है।"

> "यह सच है कि ना तो खंड (बी) और ना ही खंड (बीबी) धारा 20 टाडा की उपधारा (4) ऐसा नोटिस जारी करने के बारे में कहती है लेकिन हमारी राय में इस तरह के नोटिस जारी करने को पढ़ा जाना चाहिए। अभियुक्त और अभियोजन के हित में पक्षकारांे के बीच पूर्ण न्याय किया जाना चाहिए। यह सिद्धांतों की आवश्यकता है। नैसर्गिक न्याय किया जाना और अभियुक्त को नोटिस जारी किया जाना या लोक अभियोजक को जैसा भी मामला हो, न्याय किया जावे। कार्रवाई में निष्पक्षता के अनुरूप, जैसा कि अदालतें हमेशा करती आई हैं इस

हेतु प्रोत्साहित किया चाहिए और इस पर जोर भी दिया जावें। किसी की स्वतंत्रता और हित एवं समाज के मिश्रित हित जरिये अभियोजन एजेंसी. के बीच संतुलन रखे जाने की आवश्यकता है। अभियुक्त को या लोक अभियोजक को ऐसा नोटिस जारी करने पर रोक अधिनियम की योजना में नहीं होने के आधार पर इस पर प्रतिबंध नही है और इससे कोई पूर्वाग्रह भी किसी पार्टी के प्रति उत्पन्न नहीं होता है।"

11. श्री ललित ने आगे तर्क दिया है कि दोनों विस्तार के आवेदन की कल्पना लोक अभियोजक की रिपोर्ट के आधार पर नही की जा सकती, जो कि धारा36 ए (4) के तहत परिकल्पना की गई है और हमें फिर से प्रकरण संदर्भित किया गया है।

लोक अभियोजक एक राज्य सरकार का महत्वपूर्ण अधिकारी होता है और यह सरकार द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नियुक्त किया जाता है। वह जांच एजेन्सी का भाग नहीं है, वह एक स्वतंत्र वैधानिक संस्था से अधिकृत है। लोक अभियोजक से यह अपेक्षा की जाती है कि उससे जांच एजेन्सी द्वारा अनुरोध करने पर और जांच एजेन्सी द्वारा न्यायालय में हिरासत की समय सीमा बढाने के लिए रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर अपना स्वतंत्र मस्तिष्क का उपयोग करे, जिससे की अंवेषण एजेन्सी समयावधि के भीतर अपना अंवेषण पूर्ण करे। वह महज एक पोस्ट ऑफिस या अग्रेषण एजेन्सी नहीं है। एक लोक अभियोजक उसके समक्ष जांच अधिकारी द्वारा समयावधि का विस्तार करने के लिए दिये गए कारणों को मानने या नहीं मानने के लिए सहमत हो भी सकता है और नहीं भी। जांच अधिकारी समय बढ़ाने की मांग कर सकते हैं यदि वह यह पाते है कि जांच उचित तरीके से आगे नहीं बढ़ी है या अनावश्यक, जानबूझकर देरी की गई है या जांच पूरी करने में होने वाली देरी से बचा जा सकता है, आदि कारणों से लोक अभियोजक सहमत या असहमत हो सकता है। इस घटना में वह अदालत को ऐसी कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं कर सकता, जो कि खंड (बीबी) के तहत समय के विस्तार की मांग

करने के लिए हो। यद्यपि समयावधि के विस्तार की मांग अंतर्गत खंड (बीबी) के तहत लोक अभियोजक जांच एजेन्सी के आवेदन पर अपना स्वतंत्र मस्तिष्क का प्रयोग करता है, आवेदन के तहत बादजांच एजेंसी को एक रिपोर्ट बनाना आवश्यक है जिसमें नामित न्यायालय को उसकी प्रगति का संकेत देते हुएजांच और जारी रखने के औचित्य का खुलासा करना चाहिए और जांच को सक्षम बनाने के लिए आरोपी को आगे की हिरासत में रखेजाने और एजेंसी को जांच पूरी करने की बात उसमें रखी जानी चाहिए। लोक अभियोजक जांच का अनुरोध संलग्न कर सकता है। इस अनुरोध या आवेदन और रिपोर्ट के साथ जांच अधिकारी उसकी रिपोर्ट, जैसा कि खंड (बीबी) के तहत परिकल्पित है, का खुलासा किया जाना चाहिए, जिससे पहली नजर में ऐसा लगे कि उसने अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया है एवं वह जांच अधिकारी की प्रगति से संतुष्ट होना चाहिए और जांच को पूरा करने के लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता समझता हो। जांच जरूरी होने की अभिव्यक्ति का उपयोग वाली और प्रगति दर्शाने वाली लोक अभियोजक की रिपोर्ट और जांच और हिरासत के विशिष्ट कारण मुलजिम के समयावधि से परे निरूद्ध रखने के प्रावधान यथासंशोधित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) में खंड (बीबी) और धारा 20(4) द्वारा किसी अभियुक्त को अभिरक्षा में नही रखने के विधायी इरादे के महत्वपूर्ण संकेत हैं। विधायी मंशा किसी आरोपी को हिरासत में रखने की नहीं है। इसलिए, यह महज एक औपचारिकता नहीं बल्कि एक बहुत ही महत्वपूर्ण रिपोर्ट है।

क्योंकि इसकी स्वीकृति से अभियुक्त की स्वतंत्रता प्रभावित होती है। इसलिए इसको कठोर से खंड (बीबी) के अनुसार आवश्यकता होने पर उपयोग करना चाहिए। समयावधि बढाने की रिपोर्ट मूल रूप से लोक अभियोजक की रिपोर्ट नहीं होती है।

12. न्यायालय ने आगे कहा कि समयावधि विस्तार के लिये भले ही आवेदन लोक अभियोजक के माध्यम से पेश हुआ हो या उसके द्वारा समर्पित हो, फिर भी वह लोक अभियोजक की रिपोर्ट नहीं कहलायेगी।

13. हालाँकि, श्री भट्टाचार्जी ने बिन्दु उठाया कि ऐसे समयावधि विस्तार के आवेदन लोक अभियोजक इस अधिनियम की अंतर्गत धारा 36ए (4) द्वारा संतोषप्रद और बताई गई शर्तो के अनुरूप हो। परन्तु केवल उसकी स्वतंत्र रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई तो उसके आधार पर आवेदन की प्रकृति नहीं बदलेगी। हम पुनः दिनांक 2 अगस्त, 2007 के समयावधि विस्तार के आवेदन के संबंध में उल्लेख कर रहे है -

1. उक्त व्यक्ति को दिनांक 12.02.2007 को गिरफ्तार किया गया था जो अवैध वितरण स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ के अवैध वितरण इंटरनेट के जरिये करने में संलिप्त था।

2. और वह न्यायालय के सामने 12.02.2007 को प्रस्तुत किया गया और फिर न्यायिक अभिरक्षा में दुम दुम सुधार गृह में भेज दिया गया।

3. और मामले की जांच अभी भी जारी है।

4. यह कि सहयोगियों/संबंधित प्रकरणों में इस मुलजिम के सहयोगियो के विरूद्ध जांच ड्रग प्रवर्तन प्रशासन (डीईए), यूएसए द्वारा की जा रही है और जांच रिपोर्ट/संकलित किये गये दस्तावेज जोकि प्रकरण को साबित करने के लिए बहुत ही सुसंगत और आवश्यक है। इस संबंध में आवश्यक कदम उठाने के लिए पत्र सक्षम ऑथोरिटी को पहले ही भेज दिये गये जो रिकॉर्ड पर है।

5. यह कि सर्वर, लैपटॉप, सीडी आदि जब्त इस केस में जब्त किए गए जो पहले से ही न्यायालय के सामने रखे गये है जो सभी केंद्रीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला (एफएसएल) को दिनांक 20.2.07 पर डेटा को समझने और कई स्मरण पत्र

एफएसएल प्राप्त करने के लिए भेजे गये, परन्तु अभी तक वह रिपोर्ट पेश नही हुई। यहां पर उस पत्र का जिक्र करना उचित है कि एफएसएल की ओर से एनसीबी को एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह उल्लेख किया गया कि इतने कम समय के भीतर रिपोर्ट में भेजना संभव नहीं है।

6. यह कि सीएफएसएल की रिपोर्ट की अत्यावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आरोपी व्यक्ति के खिलाफ मामला साबित करने मेंअभियोजन पक्ष को समयावधि के विस्तार के लिए प्रार्थना करनी होगी।

7. यह कि इस अधिनियम की धारा 36ए खंड (4) के परन्तु के अनुसार समयावधि के विस्तार हेतु अभियोजन पक्ष यह याचिका प्रस्तुत कर रहा है। परिवादी के अंवेषण पूर्ण करने के पश्चात इस प्रकरण की फाईल सबमिट यह लिखाते हुये करेगा कि उक्त अभियुक्त के निरोध की और आवश्यकता है।

उपर्युक्त परिस्थितियों में न्यायालय से यह प्रार्थना करेगा कि-

कृपया 6 महीने की अतिरिक्त समयावधि जांच पूरी करने और परिवाद पेश करने हेतु दी जावे और मुलजिम व्यक्ति की न्यायिक अभिरक्षा की समयावधि पुनः बढाई जावे और दयालुता की प्रार्थना हेतु याचिकाकर्ता का कर्तव्य है जो आपकी दया सदैव प्रार्थनीय रहेगी।

14. इस आवेदन को देखने मात्र से पता चलता है कि यह प्रत्यर्थी नंबर 1 के जांच अधिकारी द्वारा दायर किया गया है और इसमें लोक अभियोजक द्वारा दूर-दूर तक भी मस्तिष्क का प्रयोग करना इंगित नहीं है और इसमें जांच की प्रगति भी दर्शित नहीं है और ना ही बाध्यकारी कारण जो कि हिरासत को 180 दिनों से अधिक बढ़ाने की आवश्यकता में होते है, बताये गये है। यह आवेदन विशेष न्यायाधीश द्वारा 2 अगस्त 2007 को मंजूर किया गया था, अर्थात जिस दिन इसे दाखिल किया गया था

उसी दिन बिना मुलजिम को नोटिस दिये और बिना उसकी कोर्ट में उपस्थिति के मंजुर कर लिया गया।

15. दूसरा आवेदन 30 जनवरी 2008 का है जो और भी अधिक समझ से परे है। हम उसी का उल्लेख नीचे कर रहे है-

विशिष्ट न्यायालय एन.डी.पी.एस एक्ट

कोलकत्ता बारासात उत्तर 24 परगना

केस नंबर-एन-23/2007

भारत संघ

बनाम

संजय केडिया....

आरोपी व्यक्ति

अभियोजन पक्ष की ओर से विनम्र याचिका प्रस्तुत है-

<u>अत्यंत आदरपूर्वक कथन है कि-</u>

1. यह कि आज परिवादपेश करने की तिथि निर्धारित है।

2. यह कि अभियोजन पक्ष आज परिवाद पेश करने की स्थिति में नही है, इसलिए और अतिरिक्त समय दिया जावे।

उपरोक्त परिस्थितियों में यह प्रार्थना की जाती है कि एक छोटी तारीख प्रदान की जावे एवं इस कार्य के लिए याचिका कर्ता पर दया की जावे। आपकी दया सदैव प्रार्थनीय रहेगी।

इस उपरोक्त हस्ताक्षरित आवेदन को देखने से यह पता चलता है कि यह निर्धारित परीक्षणों पर दूर-दूर तक खरा नहीं उतरता है, जैसा कि विष्णु ठाकुर के

मामले में सिद्धांत प्रतिपादित किये गये थे। विशेष न्यायाधीश ने इस आवेदन को भी उसी दिन जिस दिन यह एक गुप्त रूप से दायर किया गया था, उसी दिन स्वीकार कर लिया गया जो मुलजिम को बिना किसी नोटिस दिये निम्न प्रकार स्वीकार किया गयाः-

> 'संजय केडिया न्यायिक अभिरक्षा से प्रस्तुत हुआ। वकालतनामा पेश हुआ। अभियोजक ने हाजरी दी। अभियोजक ने एक समय बढाने की अर्जी भी पेश की। उसकी समय बढाने की प्रार्थना 13.2.2008 तक के लिए स्वीकार की गई। उक्तानुसार मुलजिम को प्रस्तुत करे और अंवेषण अधिकारी रिपोर्ट करे।"

16. इसलिए हमारी राय है कि समयावधि के विस्तार के प्रावधान के तहत जांच विभाग को दिया गया समय विस्तार इस अधिनियम के प्रावधान धारा 36ए(4) में उल्लेखित निर्धारित शर्तों को पूरी नहीं करता और इसलिए दोनों एक्सटेंशन कानून के विपरीत है, इसलिए उक्तानुसार खारिज किये जाते है।

17. जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है अब विशिष्ट न्यायाधीश के आदेश दिनांक 13 फरवरी, 2008 जिसके द्वारा अपीलांट की जमानत अर्जी जो डिफॉल्ट क्लोज के आधार पर प्रस्तुत की गई थी, वह खारिज कर दी गई थी। विशेष न्यायाधीश ने यह माना कि जैसा कि उच्चतम न्यायालय में 4 फरवरी, 2008 को जमानत याचिका को खारिज किया गया और उसके द्वारा अंवेषण की समयावधि को दो अवसरों में बढाया गया और परिवाद आखरी समयावधि बढाये जाने के पहले पेश किया गया। इस संबंध में प्रकरण के तथ्यों को देखते हुये बहुत सारे गंभीर आरोप मानते हुये, अपीलांट को जमानत का हकदार नहीं माना और जमानत खारिज कर दी गई। हाईकोर्ट ने भी हितेंद्र विष्णु ठाकुर के मामले में (सुप्रा) दिये गये सिद्धांतो को अपने विवेचन में भिन्न किया और अलग रूख अपनाते हुये वर्गीकृत निर्देश जो इस कोर्ट द्वारा दिये गये

उनसे पूर्णतया असंगतता दशाई। हम पुनः उच्च न्यायालय के निर्णय की कुछ टिप्पणियों प्रस्तुत कर रहे है-

दिनांक 02.08.2007 की याचिका जो छह माह की समयावधि बढाने की थी, वह जांच अधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 जांच अधिकारी द्वारा पेश की गई। हालाँकि, वह स्वयं लोक अभियोजक द्वारा पेश नहीं की गई, परन्तु विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा यह दर्शित किया गया कि यह उसकी उपस्थिति में विद्वान लोक अभियोजक ने पेश की है।

हालाँकि, ''विशिष्ट कारण'' और ''अंवेषण की प्रगति'' रिपोर्ट दिनांक 02.08.2007 को प्रेषित की गई थी, जिसमे अपीलांट के विरूद्ध अपराध दर्शाया गया था और उसके सहयोगियों के विरूद्ध युएसए में भी जांच चल रही थी और बहुत सारे ईलेक्टेरोनिक उपकरण जब्त किये गये थे जो सेंट्रल फोरेन्सिक साईन्स लैबोरेटरी में जांच के लिए भेजे गये थे जो जांच रिपोर्ट अभी तक नहीं आयी। विचारणीय न्यायालय के समक्ष और समय मांगा गया जिस पर मस्तिष्क का प्रयोग कर विषय वस्तु से संतुष्ट होते हुये प्रार्थना पत्र में उल्लेखित आधारो पर प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। जैसा कि धारा 36 ए की उपधारा (4) के प्रावधान के अनुसार अनुसंधान की प्रगति रिपोर्ट और उसमें उल्लेखित कारणों के आधार पर याचिकाकर्ता को 180 दिन बाद भी निरूद्ध किया जा सकता है। हमारी राय में इस प्रावधान की पालना की गई है।

अब हमें यह देखना है कि लोक अभियोजक की रिपोर्ट जैसा कि याचिका दिनांक 02.08.2007 जो कि इन्टेलिजेन्स अधिकारी द्वारा भेजी गई और लोक अभियोजक द्वारा पेश की गई, वह उसकी उपस्थिति में प्रस्तुत की गई। हम एक उद्धेश्य को लोक अभियोजक की रिपोर्ट बाबत करेंगे और इस बारे में अर्थ वृहद और बिना किसी राज्य को नुकसान पहुंचाये निकालेंगे।

धारा 36ए की उपधारा (4) के प्रावधान में यह वर्णित है कि विषय वस्तु इस प्रावधान के अनुरूप होनी चाहिए। वाख्या का सामान्य नियम यह है कि अधिनियम में उल्लेखित उसके प्रावधानों को उसी के अनुरूप लागू बिना किसी अन्यथा अर्थ निकाले बिना लागू किया जाना चाहिए।

दूसरे शब्दों में प्रावधान की भाषा भले ही सामान्य हो, सामान्य रूप से उसे अनुभाग द्वारा कवर की गई विषय वस्तु के संबंध मे समझी जानी चाहिए जिसमें प्रावधान इस प्रकार संलग्न है- एक बार जब हमने दिनांक 02.08.2007 की पारित आदेश की प्रभावशीलता को देख लिया, जिसे हमारे द्वारा पहले देखे गये कारणों से खारिज नहीं किया जा सकता है कि हम पाते है कि निर्विवाद स्थिति बनी हुई है कि वर्तमान याचिकाकर्ता की आगे की हिरासत 02.02.2008 तक बढा दी गई है।

xxxxxxxxxxxxxxx

अब विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 30.08.2001 को पारित आदेश की वैद्यता की बात आती है, निसंदेह उक्त आदेश के पहले स्वयं लोक अभियोजक द्वारा इस तथ्य को रेखांकित करते हुये एक याचिका दायर की गई थी, क्योंकि अभियोजक पक्ष परिवाद दर्ज करने की स्थिति में नहीं है, इसलिए कुछ समय की अनुमति दी जा सकती है। उसी के आधार पर कार्यवाही करते हुये विद्वान विचार न्यायालय ने अवधि दिनांक 13.02.2008 तक बढा दी।

याचिकाकर्ता की ओर से दिनांक 04.02.2008 को जमानत पर रिहा होने के लिए आवेदन दायर किया गया था, लेकिन इस बीच दिनांक 07.02.2008 को विपक्षी संख्या 1 की ओर से परिवाद दायर कर दिया गया था।

घटनाओं के अनुक्रम को पढने से यह आसानी से समझा जा सकता है कि अवधि विस्तार का पहला चरण दिनांक 02.02.2008 तक था जिसे बाद में दिनांक

30.01.2008 के आदेश द्वारा दिनांक 13.02.2008 तक बढा दिया गया था। यह विस्तार की उक्त अवधि के भीतर है यानि दिनांक 07.02.2008 को परिवाद की याचिका दायर की गई है।

xxxxxxxxxxxxxxxx

संपूर्ण स्थिति के हमारे समग्र मुल्याकंन के आलोक में हमारा विचार है कि श्री बसु द्वारा अनुमोदित स्थित यथार्थवादी की तुलना में एकेडमीक है, अतः न्यायपूर्ण न्याय होना चाहिए। कानून और संविधान के अर्थ में न्याय होना चाहिए न कि क्रियान्वयन की व्यक्तिगत मानसिकता के अनुसार होनी चाहिए। उक्त अधिनियम के व्यापक संदर्भ में समझना होगा।

18. अंत्यंत सम्मान के साथ यह निष्कर्ष किसी भी तरह से न्याय नहीं करते है। विष्णु कुमार के मामले में इस अदालत की टिप्पणीयों को रिवीजन बैंच द्वारा देखा गया और नजरअंदाज कर दिया गया।

19. उपर जो कहा गया है उसके आलोक में उदय मोहनलाल आचार्य के मामले (सुप्रा) के आधार पर एक वर्ष की हिरासत की अधिकतम अवधि की समाप्ति के बारे में श्री ललित की दूसरी दलील की, हमें विशेष रूप से हिरासत में लेने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भट्टाचार्ज जी द्वारा विवादित है। इसलिए हमे मामले के इस पहलु मे जाने की आवश्यकता नहीं है।

20. हम तद्नुसार इस अपील को स्वीकार करते है और विशेष न्यायाधीश के दिनांक 13 फरवरी 2008 और उच्च न्यायालय के दिनांक 05 सितम्बर 2008 के आदेश को खारिज करते है और निर्देष देते है कि अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा किया जावें।

आर.पी. अपील स्वीकार की गई

अस्वीकरण:- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी दिनेश कुमार गढवाल (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्धेश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्धेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्धेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।